गांधी-मार्ग

नवंबर-दिसंबर 2025

रवीश कुमार

फ्लोटिला

प्रतिकार की कश्तियां

गांधी-मार्ग

अहिंसा-संस्कृति का द्वैमासिक
वर्ष 67, अंक 6, नवंबर-दिसंबर 2025

गांधी शांति प्रतिष्ठान

✻

1. **शुरू में...**		3
2. **पर्यावरण :** जहरीली हवा की...	प्रताप भानु मेहता	7
3. **फ्लोटिला:1** प्रतिकार की कश्तियां	रवीश कुमार	10
4. **फ्लोटिला:2** अनगिनत लहरों की डायरी	डॉ. एम. इकबाल सिद्दीकी	22
5. **फ्लोटिला:3** मानव-मन की लहरों पर		29
6. **फ्लोटिला:4** विचार की कश्तियां	महात्मा गांधी	34
7. **कविताः** घास	कार्ल सैंडबर्ग	40
8. **संवादः** जब नदियां बोलीं...	आशीष कोठारी	41
9. **बयानः** यह मुझे कबूल नहीं है	कन्नन गोपीनाथन	46
10. **टिप्पणियां**		60
11. **पत्र**		64

आवरण : सागर की छाती पर तैरती फ्लोटिला की कश्तियां! ये कश्तियां भले गजा की तरफ जा रही थीं लेकिन दरअसल ये सारी दुनिया के मानवीय तंतु को एक धागे में पिरोने का काम कर रही थीं. कश्तियां डुबा दी जा सकती हैं; उन पर बम व ड्रोन चलाए जा सकते हैं लेकिन उनके पीछे खड़े इंसान का क्या करेंगे आप? यह वह चिरंतन आत्मा है जो इसे गुफा से खींचती हुई यहां तक लाई है. और आगे भी ले जाएगी.

वार्षिक शुल्क : भारत में 200 रुपये, दो वर्ष के 350 रुपये, आजीवन-1000 रुपये (व्यक्तिगत), 2000 रुपये (संस्थागत), एक प्रति का मूल्य 20 रुपये, डाक खर्च निःशुल्क. दो माह तक न मिलने पर शिकायत लिखें. अपना शुल्क चेक, बैंक ड्राफ्ट, मनीऑर्डर द्वारा 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' के नाम भेजें. ऑनलाइन भुगतान के लिए केनरा बैंक खाता नं. 0158101030392 IFSC CODE : CNRB 0000158.

संपादन : कुमार प्रशांत **प्रसार :** भगवान सिंह

गांधी शांति प्रतिष्ठान, 223 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002 के लिए अशोक कुमार द्वारा प्रकाशित

फोन : 011-2323 7491, 2323 7493, **Email:** gmhindi@gmail.com

मुद्रक : नीता प्रेस, 3574- गली जटवारा, नियर सबलोक क्लीनिक, दरियागंज, दिल्ली-110002, फोन नं. 8800646548

शुरू में...

कलम में जितनी संभव है शर्म की उतनी स्याही भर कर; अपने देश के नाम जितने संभव हैं उतने खून के आंसू पीकर और भारतीय न्यायपालिका की तरफ पछतावे से भरी आंखों से जितना देखना संभव है, उतना देखते हुए मैं यह लिख रहा हूं. नीचे की अदालतों में जो जमानत बार-बार रद्द की जा रही थी, सर्वोच्च न्यायालय ने भी लंबी जिरह के बाद वह जमानत रद्द कर दी. सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले के बाद यह माहौल खुली आंखों से जितना सर्द व घुटता हुआ लगता है, बंद आंखों में वह उससे भी भयावह व दमघोंटू बन जाता है. आपने कभी महसूस किया है कि जब अंधकार सामने आकर आपको घूरने लगता है तब वह कितना अंधेरा होता है! वह अंधकार से भी अंधेरा हो जाता है, क्योंकि तब वह बोलने भी लगता है.

अपने देश के जिन 10 नागरिकों को जमानत देने से देश की सबसे बड़ी अदालत ने इंकार कर दिया है, वे पिछले पांच सालों से जेलों में बंद हैं. न्यायमूर्तियों के इस फैसले से मुझे ख्याल आया कि सच, मूर्तियां भी कहीं न्याय करती हैं क्या? कर सकती हैं क्या? करें तो वे मूर्तियां न रहें!

कौन हैं ये 10 लोग? नाम ही काफी है : सरजिल इमाम, उमर ख़ालिद, गुफिशा फातिमा, अख़्तर खान, अब्दुल खालिद सैफी, मुहम्मद सलीम खान, शिफा-उर रहमान, मीरान हैदर और शादाब अहमद. 10वें अपराधी तसलीम अहमद की जमानत पहले ही रद्द हो चुकी थी. इन दसों का अपराध एक ही है कि इन सबने ''सोच-समझ कर, बखूबी बनाई योजना के तहत 2020 में राजधानी दिल्ली में दंगों को अंजाम दिया!''

क्या मैं इन दसों को याकि इनमें से किसी एक को भी जानता हूं? नहीं, हरगिज नहीं; लेकिन मैं इनमें से एक-एक को जानता हूं, क्योंकि जीवन के जो 75 से अधिक वसंत मैंने अभी तक बिताए हैं, उनमें ये ही लोग मेरे अगल-बगल रहे, बोले, चले, खेले हैं. मैं अगर इन 10 लोगों के नाम आपको फिर से बताऊं तो मेरी बात समझना शायद आसान हो जाए आपके लिए - शिवशंकर प्रसाद, राज कुमार जैन, शरद यादव, मीरा कुमारी, सुब्रह्मण्यम स्वामी, सदानंद सिंह, कार्तिक उरांव, बिशन सिंह बेदी, कुंती मुर्मू और प्रकाश झा. ये 10 लोग हैं जिन्होंने 75 से ज्यादा सालों से बड़े हो चुके हमारे गणतंत्र की जड़ें खोदने की योजनाबद्ध साजिश की. ये 10 यदि सप्रमाण पकड़े न गए होते तो हमारे सामने हमारा

गणतंत्र नहीं, उसका मलबा पड़ा होता आज!

इस सूची को देखते ही मेरी तरह आपके मन में भी तत्क्षण यह सवाल पैदा होगा कि क्या कभी ऐसा संभव है कि कोई 10 लोग मिलकर, करोड़ों की आबादी वाले इस महान देश की जड़ें खोद दें? अगर ऐसा कभी हुआ तो मैं कहूंगा कि इस देश की जड़ें थीं ही नहीं! फिर मेरी तरह आपके जेहन में भी ख्याल आएगा कि यदि इतना बड़ा षड्यंत्र रचा गया तो इस बहुधर्मी देश में यह कैसे संभव हुआ कि सिर्फ हिंदू ही इसमें लिप्त थे? यह बात अब तक तो बड़ी मजबूत लगती आ रही थी, बड़े-बुजुर्गों द्वारा हमें समझाई जा रही थी कि अपराध व अपराधी की जाति-धर्म का ठिकाना नहीं होता है. तो फिर यह कैसे हुआ कि इस मामले में अपराधियों का धर्म-ठिकाना एकदम पक्का व पुख्ता हो गया? लगता है, कहीं कुछ गड़बड़ है!

कोई उन्मत्त होकर कह उठेगा कि (एक भद्दी-सी गाली देते हुए, जैसी 'गोली मारो...' का घोष करते हुए हमारे सत्ताधारी राजकुंवर व बादशाह ने दी थी और देते ही रहते हैं!) सबको फांसी चढ़ा दो! मैं कहूंगा : क्या बात कही है, एकदम मेरे मन की बात है! लेकिन हिंदुओं की इस सूची को फिर-फिर देखने वाले कई देशभक्त कहेंगे कि नहीं, नहीं, जरा जांच-परख लो! फांसी का क्या है, वह तो अपने कानून के हाथ में आज भी है, कल भी रहेगा. लेकिन संविधान है न हमारा, और उसकी बनाई न्यायपालिका है न, तो उसे अपना काम करने दो; इन सारे अपराधियों पर आज-के-आज मुकदमा चले, इनका अपराध प्रमाण सहित देश जान ले और फिर इनको फांसी दे दी जाए! मैं कहता हूं; भाई, क्या बात कही है आपने! एक सभ्य समाज में, जिसमें इंसान बसते हैं, वहां ऐसा ही होना चाहिए!

आप ऐसा कहेंगे तो इन 10 में से कोई एक (याकि सभी-के-सभी!) कह उठेंगे कि हम तो पिछले पांच सालों से जेल में बंद हैं. न कभी मुकदमा चला है इन सालों में, न हमारी पेशी हुई है, न उधर से कभी वकील खड़ा हुआ है, न इधर से! हम पर जो भी आरोप हैं, जो पुलिस के कागजात में हैं वे सब हमें दिए जाएं ताकि हम भी और हमारे वकील भी उसे देखकर यह तो समझ सकें कि आरोप क्या हैं, और हमारा जवाब क्या है? मुकदमा चले और माननीय न्यायमूर्ति उसे सुनें, देश भी जाने, संविधान भी उसे परखे और फिर साबित हो कि फांसी पड़नी चाहिए तो पड़े!! हम जो मांग रहे हैं वह रिहाई नहीं है, जमानत है. आपने ही हमें बताया-सिखाया है कि हमारे लोकतंत्र में जमानत नागरिक का स्वाभाविक अधिकार है, जेल अंतिम अपवाद है! तो हमारे मामले में ऐसा क्यों नहीं हो रहा है? संविधान कहता है कि बिना मुकदमा चलाए किसी को जेल में बंद रखना,

उसके लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन है. इस हनन को रोकने के लिए ही तो हमने न्यायपालिका नाम का इतना बड़ा सफेद हाथी पाल रखा है. यह खाता बहुत है, करता क्या है यह समझना अब भारी हुआ जाता है.

आपको भी लग रहा है न कि हमारी दूसरी सूची के अपराधियों का ऐसा कहना एकदम खरा है! आज मुकदमा चलाओ और अपराध साबित होता हो तो कल फांसी दे दो, तो कोई एतराज नहीं करेगा! लेकिन जरा ठहरिए, अगर दूसरी सूची के लिए यह बात आपको सही लगती है, तो पहली सूची के लिए क्यों नहीं? उसकी बात आती है तो सब पलट जाते हैं, सर्वोच्च न्यायालय भी! तो बात ऐसी बनती है कि अपराध व अपराधी का फैसला हम नाम देखकर करते हैं. यह शर्मनाक है, यह अंधेरा है, यह दमघोंटू है. यह लोकतंत्र की हत्या है.

क्या हमारे न्यायमूर्तियों को कभी इसका अहसास होता है कि जितनी बार वे पहली सूची के लोगों की जमानत रद्द करते हैं, उतनी-उतनी बार न्यायपालक की उनकी छवि धूमिल होती जाती है? क्या हमारी न्यायपालिका को इसका अहसास है कि भारतीय नागरिक के मन में आज अपने चुनाव आयोग की विश्वसनीयता जिस तरह चूर-चूर हो गई है, न्यायपालिका की विश्वसनीयता भी उसके आसपास ही है?

बहुमत के नशे में चूर कोई सरकार ऐसा कानून बना देती है जिसमें व्यवस्था यह बनाई गई है कि यूएपीए के मामले में की गई गिरफ्तारी न्यायपालिका की समीक्षा के भीतर नहीं आएगी; ऐसा चुनाव आयोग बनाया जाता है कि जो हमेशा सरकार की तरफ ही झुका रहेगा; ऐसा कानून बनाया जाता है कि चुनाव आयुक्तों पर कभी, किसी अदालत में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है आदि-आदि, और हमारी न्यायपालिका देखती रह जाती है, तो वह अपने होने का मतलब ही खो देती है. संविधान में न्यायपालिका को मृत संवैधानिक व्यवस्था नहीं, लोकतांत्रिक अधिकारों की सजग-सक्रिय प्रहरी की भूमिका में रखा गया है.

हम भारत के नागरिकों ने अपने संविधान की संरचना ऐसी बनाई जिसमें हमने अपनी न्यायपालिका को यह आदेश दिया है कि आपको निरंतर चौकन्ना रहकर यह देखना है कि कोई भी विधायिका या कोई भी कार्यपालिका या न्यायतंत्र का कोई भी पुर्जा कहीं से, कभी संविधान पर हाथ न डाल सके! ऐसा होने से पहले, ऐसा होने के बाद या ऐसी संभावना भांप कर न्यायपालिका को संविधान की तलवार लेकर खड़ा हो जाना है. इसलिए समूचे संविधान में हमने एक ही ऐसी संरचना बनाई है जिसे सतत विपक्ष में रहना है यानी कि संविधान के पक्ष में रहना है और वह है न्यायपालिका. हमारा संविधान अलिखित नहीं, लिखित है; और उसे सिर्फ वकील व जज साहबान ही नहीं, हम भी पढ़ पाते हैं.

जब आपकी व्याख्याएं बहुत जटिल होती हैं, तब हम आसानी से समझ जाते हैं कि आप संविधान के शब्दों के पीछे छिपी भावना को समझने में चूक रहे हैं या फिर संविधान की अपनी लक्ष्मण-रेखा पर पांव धर रहे हैं. यह आपका वह लोकतांत्रिक अपराध है जिसकी सजा आपकी नहीं, हमारी अदालत में दी जाती है. सरकारों को भले पांच साल में एक बार (या जब भी चुनाव हो!) हमारी अदालत में आना पड़ता है, आप तो हर रोज हमारी अदालत में होते हैं, यह न हम भूलें, न आप!

2020 का दिल्ली दंगा पूर्वनियोजित था यह एकदम सच है, लेकिन यह नियोजन किसने किया था, इसकी पड़ताल आपको करनी है. नागरिकता कानून की आड़ में जो कुछ करने की योजना थी, भारतीय नागरिकों ने उस दौर में अपूर्व एकता व साहस के साथ दिल्ली में ही नहीं, देश भर में उसका प्रतिकार किया था. अपने संविधान के आईने में उसने अपनी छवि खोजी थी. सरकारी खेल को वह बहुत बड़ी व गहरी चुनौती थी. 30 जनवरी 1948 नहीं आई होती और महात्मा गांधी तब जीवित होते तो वे भी 2020 में अपने युवकों के साथ उसी तरह खड़े होते जिस तरह सन् 42 में हुए थे. लेकिन इतिहास बताता है कि उस दौर में भी लोग भटके थे, गलत रास्तों की ओर गए थे और तब गांधी ने अपनी अदालत में उनकी पेशी भी ली थी. वैसी ही सावधानी आज भी करनी है. इसलिए बगैर एक पल गंवाए इस लेख की पहली सूची के लोगों पर मुकदमा चलाया जाए, रोज-रोज की सुनवाई के साथ अदालत अपना फैसला सुनाए. फिर संविधान के जाल में फंसता कौन है, किसे फांसी होती है, यह तमाशा हम सब देखेंगे. इसलिए हमारे लोकतंत्र को आज व अभी जमानत चाहिए.

-कु.प्र.

*

धूप तो धूप है इसकी शिकायत कैसी
अबकी बरसात में कुछ पेड़ लगाना साहब.

● निदा फाजली